International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(4): 215-217

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(4): 215-217
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-05-2019
Accepted: 24-06-2019

**डॉ. रुचि शर्मा**
संस्कृत विभाग, बी0 एस0 ए0 कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत

**Correspondence**
**डॉ. रुचि शर्मा**
संस्कृत विभाग, बी0 एस0 ए0 कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत

# ''श्रीरामरसायनम्'' काव्य में निहित राष्ट्रपूर्वज रामभद्र की प्रासंगिकता

## डॉ. रुचि शर्मा

**प्रस्तावना**

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् श्रीराम को अपने ग्रन्थ रामायण में मर्यादापालक लोकहितचिन्तक महामानव स्वीकार करने के साथ–साथ उन्हें राष्ट्रपूर्वज भी स्वीकार किया है; क्योंकि भगवान् श्रीराम एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि ने ही राष्ट्रपूर्वज भगवान् श्रीरामचन्द्र में नाना प्रकार के मानवसुलभ भावों और गुणों का हमें न केवल दिग्दर्शन ही कराया अपितु हमें हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवन में इन गुणों के अनुसार आचरण करना भी सिखाया है।

समाज को सफल और समृद्ध बनाने के लिये ऐसे जननायक की आवश्यकता होती है, जिसका मन, स्वरूप, तन बलिष्ठ और प्रवृत्ति प्रकृष्ट पराक्रमशीलता की हो और ये तीनों गुण राष्ट्रपूर्वज श्रीराम में प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि 'रामराज्य' नाम से विख्यात उनका राज्य वर्तमान युग में आदर्श राज्यव्यवस्था का पर्याय बन गया है।

''श्रीरामरसायनम्'' काव्य में भी कवि लक्ष्मण सिंह अग्रवाल ने श्रीराम को राष्ट्रपूर्वज महापुरुष के रूप में स्वीकार किया है– ''तादृषो राष्ट्रपूर्वजस्य तत्र भगवतः श्रीरामचन्द्रस्यैतिहासिकत्वं को नु खलु सङ.केत विना दुराग्रहिणं विद्वेषिणम्।''[1]

अस्तु, वर्तमान युग में राष्ट्रपूर्वज श्रीराम की प्रासंगिकता को निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है–

**दुर्धर्ष मानुषी सामर्थ्य के धनी श्रीराम**

आदिकवि वाल्मीकि यदि श्रीराम को ईश्वर के अवतार या दैवी विभूति के रूप में दर्शन करते तो सम्भवतः वह उनके आत्मिक गुणों, मानवसुलभ भावनाओं और अन्य चारित्रिक विशिष्टताओं का चित्रण इतनी सुन्दरता से न कर पाते। भगवत्सत्ता से सम्पन्न महापुरुष अथवा किसी दैवी विभूति के लिये तो कुछ सशक्य और असम्भव नहीं होता। समस्त कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जाने के कारण पौरुश प्रदर्शन का या तो अवसर ही नहीं आता और यदि आता है तो दैवीय शक्तियाँ ही सभी कार्य सम्पन्न कर देती हैं। मानुषी संघर्षशीलता और शौर्य को श्रेय न मिलने से समाज को तुष्टि प्राप्त नहीं होती।[2] आसुरी शक्ति का निरन्तर परास्त होते चले जाना दिखाई नहीं देता। अतः समाज का पौरुष जागरण नहीं होता और लोगों को स्वयं का मनोबल ऊँचा रखने की कोई बड़ी प्रेरणा प्राप्त नहीं होती। परन्तु श्रीराम अपने गुणों के द्वारा हमें स्वयं में दुर्धर्ष पराक्रमशीलता उत्पन्न करने की प्रेरणा देते हैं। वह सर्वत्र मानुषी बल, विक्रम को महिमामंडित करते हुये प्रतीत होते हैं।

**उत्थान–पतनमय बहुआयामी जीवन के धारक श्रीराम**

महाकवियों ने श्रीराम को अमित बलशाली, पराक्रमशील, साहसी और शूरवीर योद्धा होने के साथ–साथ एक सद्भावसम्पन्न, संवेदनशील, दयालु, कारूणिक, सशील और संयमी मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। यदि उन्हें भगवान् के अवतार के रूप में चित्रित किया गया होता तो उनका व्यक्तित्व लोकातीत–सा लगता और हमें साधारण में असाधारण और लौकिक में अलौकिक की अनुभूति का आनन्द प्राप्त न होता। इस प्रकार के चित्रण में रामभद्र की मानवीय गरिमा इतनी स्पष्ट नहीं हो पाती। राष्ट्रपूर्वज श्रीराम एक संघषशील मानव के रूप में प्रतिष्ठित हुये हैं और आपने स्वयं के सभी कार्य स्वमानुषी सामर्थ्य से किये हैं और अपने इस संघर्षमय जीवन में अनेक उतार–चढ़ावों से युक्त रहे हैं। उन्हें मासिक अवसाद भी सहन करना पड़ा और इस संघर्ष में उनकी शक्तियों का ह्रास भी हुआ। उन्होंने साधारण मनुष्य की भाँति बंधुजनों की हानि, वियोग की पीड़ा तथा दुःख, दरिद्रता, अवमानना, परिताप आदि अनेक पीड़ादायक अवस्थाओं को सहन किया।

महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम को पीड़ा सहते हुये, विलाप करते हुये भी दिखाया है। वह निराश भी होते हैं, भ्रमित भी होते हैं, धोखा भी खाते हैं, सन्देहों से भी घिरते हैं और आशंकाग्रस्त भी होते हैं; तथापि साहस का त्याग नहीं करते हैं। परिस्थितियों की विकटता के अनुसार उनके मनोबल में उतार–चढ़ाव आये। एक जिजीविषासम्पन्न युयुत्सु मानव की भाँति उन्हें स्नेह और सहानुभूति, सान्त्वना और प्रेरणा, साहचर्य और सद्परामर्श तथा सहयोग और सबल की आवश्यकता तो होती है परन्तु स्वसामर्थ्य वृद्धि में उन्होंने कदापि आलस्य का दर्शन नहीं कराया।

## शोक से उत्तम संकल्प की ओर अग्रसर श्रीराम

श्रीराम ने जीवन में सर्वस्व ध्वस्त करने वाली परिस्थितियों से लोहा लिया। वह न तो आशाहीन हुये और न जिजीविषा ने ही कभी उनका साथ छोड़ा। उन्होंने विश्वासघात भी सहा है, परन्तु उनके मन में किसी प्रकार का स्थायी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। स्वयं को दशनिष्कासित कराने वाली कैकेयी के प्रति उनके हृदय में दया भाव है। रावणविजय पर आशीर्वाद देने उनके मानसपटल पर आये पिता दशरथ से वह कहते हैं– पिताजी आपने पुत्र सहित कैकेयी माता का परित्याग करने की बात कही थी। मैं नहीं चाहता कि आपका वह शाप माता कैकेयी और भरत पर लागू हो–

सपुत्रां त्वां त्यजामिति यदुक्ता कैकेयी त्वया।
स शापः कैकेयी घोरः सपुत्रां न सपृशेत् प्रभो।। [3]

इस प्रकार श्रीराम जनमानस को शिक्षा देते हैं कि पीड़ादायक अनुभूति मनुष्य को अपनी आत्मा की गहराइयों में उतरने की सामर्थ्य देती है और यही मनुष्य को उत्तम संकल्प अथवा जनकल्याणकारी कार्यों की ओर आगे बढ़ाती है; क्योंकि हर्ष और विषाद का अनुभव करना मनुष्य को उसकी वास्तविक पहचान देता है। इससे मनुष्य छोटा नहीं होता। यह मनुष्य ही है जो शोक की पीड़ादायक अनुभूतियों के माध्यम से स्वयं के अन्तरतम तक पहुँच जाता है और अपनी सत्ता को उसके वास्तविक रूप में पहचानने लगता है।

## अन्तर्द्वन्द्वों में पल्लवित राम का व्यक्तित्व

मनुष्य का मनुष्यत्व उसके मन और मस्तिष्क में निरन्तर चलते रहने वाले अन्तर्द्वन्द्व में ही पल्लवित होता है। श्रीराम में विविध प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और उनकी चित्तवृत्तियों में उतार–चढ़ाव पैदा करते हैं। वह कभी पाषाणतुल्य कठोर हो जाते हैं तो कभी कुडमल से कोमल दिखने लगते हैं। कभी रुक्ष वाणी में बात करते हैं तो कभी अत्यन्त सौम्य हो जाते हैं। पिता दशरथ को एक आदर्श प्रजापालक राजा मानते हुये वह उनका सम्मान करते हैं और उनकी दुर्बलता भी उनके ध्यान में रहती है। वह कहते हैं कि जिस प्रकार जल की वर्षा कर मेघ सभी की कामनायें पूर्ण करता है, उसी प्रकार राजा दषरथ अपना कर्त्तव्यपालन करते हैं; परन्तु इस समय वह राजनी कैकेयी के प्रेमपाश में बंधे हैं। उसने अपने पुत्र के लिये राज्य पा लिया है। अतः भय इस बात का है कि वह अपनी सौतों से अच्छा व्यवहार नहीं करेंगी–

अभिवर्षति कामैर्यः पर्जन्यः पृथिवीमिव।
स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपतिः।।
सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याश्वपते सुता।
दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम्।।
न स्मरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां च सुदुःखिताम्।
भरतोराज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थितः।। [4]

निरन्तर चौदह वर्ष पर्यन्त अगणित बाधाओं, संकटों और अभावों का जीवन व्यतीत करने वाले किसी भी मनुष्य में अनेक प्रकार की शंकायें और आशंकायें जन्म लेती हैं। परन्तु वह अपने प्रबुद्ध विवेक तथा सद्परामर्शदाता, हितैषियों और सहयोगियों के समझाने पर उन्हें नष्ट भी कर देता है। यही व मानुषीभाव और मानुषी मानसिकता है जो मनुष्यों को विचलित करती हुई भी अन्ततः उन्हें सम्यक् मार्ग ही दिग्दर्शित करती है। अत्यन्त यातनादायक परिस्थितियों का सामना करते और विविध प्रकार के द्वन्द्वों को झेलते हुये अपना मार्ग प्रशस्त करने में जो महानता है वह सरल सीधे मार्ग से चलकर लक्ष्य तक पहुँचने में कहाँ? ''मनुष्य का मनुष्यत्व देवोपम कर्म में नहीं वरन् मनुष्योक्ति कर्म में ही प्रस्फुरित होता है। भगवत् ऊर्जा द्वारा सम्पन्न हुआ कर्म इतना आकर्षक नहीं होता है जितना कि मानुषी साहस और पराक्रम से सिद्ध हुआ कर्म होता है। मनुष्य के रूप में श्रीराम की जो शोभा है वह दिव्य विभूति के रूप में नहीं हो सकती थी। कर्मठता में जो सौन्दर्य है वह स्वतः ही सम्पादित हो जाने वाले कर्म में कहाँ?'' [5]

## मानुषी गुणों के भण्डार श्री राम

श्रीराम मानुषी गुणों के भण्डार हैं। वह साहसी, पराक्रमी और युद्धकशल भी हैं और सम्बन्धों की मर्यादाओं के पालक भी। महर्षि वाल्मीकि ने यद्यपि उन्हें मानवीयता के एक आदर्श ढाँचे के रूप के में प्रस्तुत किया है परन्तु समय–समय पर आ घेरने वाली भ्रान्तियों और शंकाओं का विवेचन–विश्लेषण करना भी वह नहीं भूले हैं। लंका से आई सीता के विषय में जब वह कहते हैं कि कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा जो तेजस्वी होकर भी अन्य घर में रही स्त्री को मात्र इस लोभ से ग्रहण कर लेगा कि वह सौहार्दपूर्वक उसके साथ रही है। सीता ने इस आक्षेप का उत्तर देते हुये जो कुछ कहा है वह मानो राम के चरित्र–दोष पर साधा गया वाल्मीकि का वार है। सीता कहती हैं कि जो बात मेरे वश में है, मैं मात्र उसी के लिये दोषी ठहराई जा सकती हूँ–

पराधीनेषु गात्रेषु किं करिण्याम्यनीश्वरी।।
मदधीनं तु यत् तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते। [6]

सीता के मन में श्रीराम के प्रति कटुता का भाव उत्पन्न होता है और वह कहती हैं कि नीच श्रेणी की स्त्रियों का आचरण देखकर यदि आप समग्र स्त्री जाति पर ही सन्देह करते हैं तो यह उचित नहीं है–

पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशंकसे।
परित्याजैमां शंका तु यदि तेऽहं परीक्षिता।। [7]

तत्पश्चात् श्रीराम के समस्त सन्देह नष्ट हो जाते हैं। श्रीराम यदि मानव है तो उनके चरित्र में कुछ त्रुटियाँ भी हो सकती हैं और इनसे उनकी महानता में कोई न्यूनता नहीं आती है।

## स्थितप्रज्ञ महामानव

श्रीराम ने मोहग्रस्त होकर कोई कार्य नहीं किया। स्वार्थ ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया। निजसुख सुविधा और शासन का अधिकार छिन जाने पर भी वह अविचल बने रहे। जब उन्हें वनवास दिया जाता है तो वह तुरन्त प्रस्थान का मन बना लेते हैं। अभिषेक की सामग्रियों का वह तिरस्कार नहीं करते अपितु उनकी आदरपूर्व परिक्रमा करते हैं। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि जिस प्रकार चन्द्रमा का क्षीण होना उसकी सहज शोभा का अपकर्ष नहीं कर सकता उसी प्रकार राज्य का न मिलना राम की कान्ति को मलिन नहीं कर सका। राम समस्त राज्य तथा उसके समस्त सुख सम्भार छोड़ रहे थे तथापि उनके चित्त में सर्वलोकातीत जीवन मुक्त महात्मा की भाँति कोई विकार नहीं देखा गया–

अभिषेचनिकं भाण्ड रामः प्रदक्षिणम्।
शनैर्जगाम सापेक्षो दृष्टिं तत्राविचालयनफ।।
न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति।

लोककांतस्य कांतत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः।।
न वनं गंतुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया।। [8]

श्रीराम पूर्णसन्यासी हो गये थे। वाल्मीकि रामायणानुसार उन्हें सत्ताईस वर्ष की आयु में वनवास मिला और उन्होंने चौदह वर्ष पर्यन्त पूर्ण संयम और अनुशासन का जीवन व्यतीत करने और तपस्वियों का भक्षण करने वाले राक्षसों का नाश करने का व्रत लिया।

## आदर्श योद्धा

आत्म–नियन्त्रण, अनशासन तथा आचार सम्बन्धी अन्य बहुत सी विशिष्टताओं के साथ–साथ श्रीराम युद्ध की आचार संहिताओं का भी कठोरतापूर्वक पालन करने वाले महापुरुष हैं। वह एक आदर्श योद्धा हैं। युद्ध में हताहत रावण का विधिपूर्वक अन्तिम संस्कार करने के लिये उसके भ्राता विभीषण से आग्रह करते हुये वह उनसे कहते हैं कि विभीषण! शत्रुता मरने तक ही होती है। मरने के पश्चात् उसका अन्त हो जाता है। इस समय रावण जैसे तुम्हारा भाई है वैसे ही मेरा भी है, इसीलिये इसका अन्तिम संस्कार करो–

मरणानि वैराणि निर्वृत्तः नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।। [9]

श्रीराम गुणग्राहक भीं है। अतः वीरता, पराक्रम साहस व सांग्रामिकता के लिये शत्रु की भी प्रशंसा करते हैं। वह विभीषण से कहते हैं– यह निशाचर रावण भले ही अधर्मी और असत्यवादी रहा हो, परन्तु संग्राम में सदैव तेजस्वी, बलवानश तथा शूरवीर रहा है। इन्द्र आदि देवता भी इसे परास्त नहीं कर सकते थे। समस्त लोकों को आक्रान्त करने वाला रावण बल–पराक्रमसम्पन्न और मनस्वी था– ''महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः''। [10]

श्रीराम में साम्राज्य–विस्तार की प्रवृत्ति नहीं थी। विजित भू–भागों को तुरन्त वहाँ के जननायकों को सौंप देते थे। विभीषण को लंका का शासक बनाने में उन्होंने क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं किया। उन्होंने अपने बल–पराक्रम का अपव्यय नहीं किया। बालीवध भी उन्होंने उसे अनैतिकता का दण्ड देने के लिये ही किया।

## सामाजिक चेतना के प्रतीक

श्रीराम सामाजिक चेतना के प्रतीक हैं। [11] इसीलिये निषादराज उनके लिये 'भरत सम भाई' थे। भीलनी शबरी उनके लिये माता कौशल्या के समान पूजनीया थीं। गीधराज जटायु पितृतुल्य थे। उनका तो सबसे भक्ति का सम्बन्ध था; फिर भले वह कोई भी हो। परिणामस्वरूप उन्हें इन सभी का प्रेम, सहानुभूति, श्रद्धा और पूजाभाव प्राप्त हुआ। राम ने जो नैतिक–धार्मिक साहस जाग्रत किया, उसके बल पर उनकी वन्यसेना उन्हीं के नेतृत्व में अधर्मी रावण से युद्ध करने लगी। श्रीराम उनके परिजन बने थे, उनके लिये वे प्राण तक न्यौछावर करने को उद्यत हो गये।

## भारतीय सांस्कृतिक चेतना की आत्मा

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम भारतीय सांस्कृतिक चेतना की आत्मा हैं। [12] पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय मर्यादाओं को चरितार्थ करने के कारण वे पुरुष से पुरुषोत्तम बने। उनके इन्हीं गुणों से प्रभावित और प्रेरित होकर गोस्वामी तुलसीदास ने मर्यादापुरुषोत्तम में देवत्त्व किया। श्रीराम के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता मर्यादाओं का पालन करने तक ही सीमित नहीं है, अपितु उन्होंने अपने परिवार, समाज, प्रजा यहाँ तक कि सेना से भी रणक्षेत्र में मर्यादित नैतिक मूल्यों का पालन कराया।

वनगमन के अवसर पर श्रीराम पिता दशरथ को प्रणाम करने और अनुमति माँगने गये, परन्तु पुत्र–प्रेम–पुम से विह्वल महाराज दशरथ की इच्छा उन्हें वनवास देने की नहीं थी। उनकी मनःस्थिति का चित्रण करते हुये गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं–

विधिहि मनाव राउ मन माहीं।
जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं।।
सुमिर महेसहि कहई निहोरी।
विनती सुनहु सदासिव मोरी।।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी।
आरति हरहु दी जनु जानी।।
तुम्ह प्रेरक सब के ह्रदयँ, सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं, घर परिहरि सीलु सहेनु।। [13]

पिता की इस मनःस्थिति का अनुभव श्रीराम को हो गया था। उनके लिये रघुकुल के वचन–धर्म की मर्यादा का पालन न केवल स्वयं करना वरन् अपने पिता दशरथ से भी कराना उनकी प्राथमिकता बन गयी। तब उन्होंने सम्पूर्ण माया, ममता, मोह, लोभ, राज्य आदि का त्यागकर विश्व के कल्याणार्थ वनगमन किया।

## धर्मरक्षा में दृढ़

आदिकवि वाल्मीकि ने श्रीराम के चरित्र को 'रामो विग्रहवान् दृढ़' कहा है अर्थात् धर्म ही राम के (विग्रह) रूप में अवतरित हुआ है। [14] वे धर्म के समग्रस्वरूप के मर्मज्ञ थे। तदनुसार आचरण भी करते थे। तुलसीदास के शब्दों में वे 'धर्मधुरीण' और 'धर्म की गति' जानते थे। मर्यादित आदर्श, नैतिक आचरण के दैवीय गुणों के कारण श्रीराम सभी के लिये पूजनीय बन गये।

मर्यादापुरुषोत्तमता मानवता का अन्तिम एवं सर्वश्रेष्ठ सोपान है। भगवान् राम का देवत्व मनुष्यत्व का सर्वोच्च सोपान है। 'आचारः परमो धर्मः' के वे श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त रामकथा पिछले हजारों वर्ष से भारत के घर–घर में कही और सुनी जा रही है। कारण है, श्रीराम की महानता और उनका आदर्श। पुत्र, पति, भाई, मित्र, शासक और यहाँ तक कि शत्रु के रूप में भी वह महान् हैं। [15]

निष्कर्षतः राष्ट्रपूर्वज श्रीराम की प्रासंगिकता के विषय में यह कहा जा सकता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम, प्रेम और प्रभाव की अमृतमयी कथाओं का श्रवण, पठन और मनन ही परम कल्याण करने वाला है। उनका प्रत्येक कार्य, आचरण और चरित्र पूजने के साथ ही जीवन में उतारने के लिये भी है। उनके जीवन में ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं है, जिसका हम अनुकरण न कर सकें। उनका व्यक्तित्व, कृतित्व और चरित्र परिवार, समाज तथा राष्ट्र को और उसके प्रत्येक व्यक्ति को परस्पर जोड़ता है। श्रीराम का लोकोत्तर चरित्र पूजनीय तो है ही, उससे अधिक अनुकरणीय है।

## संधर्व ग्रन्थ


1. द्रष्टव्य श्रीरामरसायनम् : भूमिका
2. विश्वज्योति : संपा0 डॉ0 त्रिलोकचन्द तुलसी, पृ0 सं0–32
3. वाल्मीकि रामायण : युद्ध काण्ड, अ0–116, श्लोक सं0 25
4. वाल्मीकि रामायण : अयोध्या काण्ड, अ0–31, श्लोक सं0 12–14
5. विश्वज्योति : संपा0 डॉ0 त्रिलोकचन्द तुलसी, पृ0–35–36
6. वाल्मीकि रामायण : अयोध्या काण्ड, अ0–116, श्लोक सं0 9
7. वाल्मीकि रामायण : अयोध्या काण्ड, अ0–116, श्लोक सं0 7
8. वाल्मीकि रामायण : अयोध्या काण्ड, अ0–19, श्लोक सं0–7
9. वाल्मीकि रामायण : युद्ध काण्ड, अ0–112, श्लोक सं0–26
10. विश्वज्योति : संपा0 डॉ0 त्रिलोकचन्द तुलसी, पृ0 सं0–37
11. कल्याण : राधेश्याम खेमका, पृ0 सं0–988
12. कल्याण : राधेश्याम खेमका, पृ0 सं0–989
13. रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास, 2/44/6–8, दोहा–44
14. कल्याण : राधेश्याम खेमका, पृ0 सं0–989
15. विश्वज्योति : संपा0 डॉ0 त्रिलोकचन्द तुलसी, पृ0 सं0–37